LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 12: भक्तियोग

2/2 (श्लोक 10-20), शनिवार, 18 जनवरी 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/egSoV-CzKew

सर्वश्रेष्ठ भक्त की विशेषताएँ

गुरु वन्दना एवं दीप प्रज्वलन के साथ भक्तियोग नामक इस पवित्र अध्याय का विवेचन प्रारम्भ हुआ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुःगुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुःसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

बारहवाँ अध्याय बहुत ही अद्भुत अध्याय है। यह बहुत ही सरल सुन्दर, केवल बीस श्लोक वाला, जीवन के कई रहस्य खोलने वाला और जीवन की दिशा को बदलने वाला है।

यह बारहवाँ अध्याय जीवन को नई गति प्रदान करने वाला और जीवन को आनन्दमय बनाने वाला है।

हमने पिछले सत्र में जाना कि अर्जुन ने भगवान से प्रश्न किया कि जो निरन्तर आपके सगुण रूप की उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं या जो आपके अव्यक्त रूप की पूजा करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं?

श्रीभगवान पहले श्लोक में कहते हैं कि सगुण, साकार रूप में जो भक्त मेरी पूजा करते हैं, वे निश्चय ही श्रेष्ठ हैं।

जैसे कोई माँ कहती है मुझे छोटा बेटा बहुत प्रिय है इसका मतलब ये नहीं कि वो बड़े से प्यार नहीं करती। वह इस भाव से कहती है कि वह बड़ा अपने आप को सम्भालने में सक्षम है।

उसी प्रकार भगवान ने कह दिया कि सगुण, साकार रूप में जो भक्त मेरी पूजा करते हैं, वो उत्तम हैं। फिर उन्होंने कहा कि निर्गुण निराकार रूप में सभी प्राणियों में मेरा ही रूप देखने वाले भी उतने ही श्रेष्ठ हैं। लेकिन यह मार्ग बहुत ही क्लेशकारक है।

तदुपरान्त भगवान ने अर्जुन को अत्यन्त प्रेम से भक्ति के अनेक प्रकार और उनके द्वारा ईश्वर प्राप्ति के मार्ग बताए।

मय्यावेश्य मनो ये मां(न्), नित्ययुक्ता उपासते|

भगवान कहते हैं कि नित्य मेरी उपासना करनी पड़ेगी। मन और बुद्धि को लगाकर करनी पड़ेगी। वो कैसे कर सकते हैं?

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं(न्) निवेशय|

भगवान कहते हैं कि मन और बुद्धि लगाओ एवं मन और बुद्धि को अर्पण कर दो तो निश्चित रूप से प्रगति की दिशा में ऊपर ही बढ़ोगे। अगर इसमें भी असमर्थ हो तो क्या करना चाहिए?

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि, मत्कर्मपरमो भव|
मदर्थमपि कर्माणि, कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि||

भगवान कहते हैं कि तुम जो भी काम कर रहे हो, वह मेरा काम समझकर करना, ऐसा करने से तुम्हें सिद्धियाँ प्रप्ति हो जाएँगी। तुम ऑफिस में काम करते हो। यदि तुम्हारे पास कल कोई काम के लिए आये तो अपने माथे पर शिकन नहीं देना, उसका काम मेरा काम समझ कर कर देना।

अगर दुकानदारी करते हैं, कोई ग्राहक आयेगा तो उसे भगवान मान कर सेवा करना। ऐसे दुकानदर से कभी पाप नहीं हो सकते क्योंकि उसने ग्राहक को भगवान मान लिया। ऐसा करने से सिद्धि प्राप्त हो जाएगी।
एक बहुत ही प्रसिद्ध कहानी है:

एक युवा संन्यासी को सिद्धि प्राप्त हो गयी। वह जिसकी तरफ क्रोध से देखता, उसे भस्मसात कर देता। एक दिन वह एक पेड़ के नीचे बैठकर तपस्या कर रहा था। पेड़ के ऊपर बैठे पक्षी ने अज्ञान में उस पर गन्दगी कर दी। पक्षी की बीट उसके कन्धे पर जा गिरी। गुस्से से युवा संन्यासी ने उस पक्षी को देखा और वह पक्षी भस्म हो गया।

उस युवा संन्यासी को अपनी सिद्धि का अहङ्कार हो गया। एक दिन जब उसके भोजन का समय हुआ तो वह गाँव में भिक्षा माँगने के लिए गया।
एक घर के दरवाजे के सामने खड़े होकर उसने आवाज लगाई,
'ओम भवत भिक्षाम देहि'
अन्दर से आवाज आई, हे! तपस्वी रुक जाइएगा, मैं आ रही हूँ। उस गृहणी को कुछ अधिक समय लग गया। इससे तपस्वी की क्रोधाग्नि जागृत हो गयी और क्रोद्धित होकर उसने जोर से आवाज लगाई '
ओम भवत भिक्षाम देहि'।
अन्दर से गृहणी आयी और उस तपस्वी को भिक्षा स्वरूप अन्न दिया।
वह स्त्री बोली, "क्षमा करें मुनिवर, अन्दर मेरे पति बीमार हैं, उन की सेवा करना मेरा पहला कर्तव्य है। आप मेरे ऊपर इतना क्रोधित मत होइए। कहीं ऐसा ना हो कि आपके क्रोध से मैं भी पक्षी की तरह जल जाऊँ।"
अब संन्यासी के सिर में चक्कर आने लगा। वह बोला, "पहले ये बतायें कि आपको कैसे पता चला?"
"अभी मेरे पास समय नहीं हैं, मेरे पति बीमार हैं। आपको इस प्रश्न का उत्तर जानना है तो सामने तुलादार वैश्य बैठा है, उससे मिल लीजिए।" यह कहकर वह स्त्री चली गई।
अब संन्यासी तुलादार वैश्य की दुकान के पास आया। सामने ग्राहकों की बहुत भीड़ थी। पीछे से संन्यासी इशारा कर रहा था कि मुझे कुछ समय चाहिए। तुलादार वैश्य प्रणाम कर बोला, रुकिए मुनिवर और फिर ग्राहक के सेवा में लग गया। ऐसे ही कुछ समय हो गया। संन्यासी बार-बार इशारा कर उसका ध्यान आकर्षित कर रहा था।

तुलादार वैश्य बोला 'आपको रुकना पड़ेगा। आप यह जानने के लिए आये हैं कि वह महिला कैसे जानती है कि आपके क्रोध से वह पक्षी जल कर भस्म हो गया। आपको रुकना पड़ेगा। मेरे सामने ग्राहक के रूप में मेरे राम हैं, कृष्ण हैं, मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ। अगर आपको जल्दी उत्तर चाहिये तो सामने वो कसाई बैठा है, वह आपके प्रश्न का उत्तर देगा।"

कसाई के पास कोई भीड़ नहीं थी। संन्यासी ने मन में सोचा कि अब मुझे कसाई के पास जाना पड़ेगा। कसाई के पास से बदबू

आ रही थी। संन्यासी ने दूर से ही प्रणाम किया। कसाई ने भी प्रणाम किया और कहा, "महाराज आपको ये पसन्द नहीं हैं। आप शाकाहारी हैं। यह मेरा पैतृक कर्म है। यह मेरा दैनिक व्यवसाय है। आप जानना चाहते हैं कि उस महिला और दुकानदार ने यह कैसे जान लिया कि आपके श्राप से एक पक्षी भस्म हो गया था।"

अब तो वह तपस्वी और भी कम्पित हो गया और पूछने लगा आपने कौन सी तपस्या की है, जो आप अन्तर्यामी हो गए हैं।
कसाई ने कहा, " मैंने कोई साधना नहीं की। बस एक काम किया, मेरे माता पिता जो वृद्ध हैं, उनकी नित्य सेवा करता हूँ। दुकान आने से पहले नित्य सेवा करके आता हूँ। भगवान की पूजा करने का समय मिलता नहीं है। इसलिए सोचता हूँ कि उनकी सेवा ही भगवान की सेवा है।
जब दुकान आता हूँ, तो ग्राहक को भगवान मानकर सेवा करता हूँ। इतना मैंने कर्म किया है। जो किया शुद्ध भाव से किया है। इसलिय मैं सोचता हूँ कि यह सब भगवद कृपा है।"

भगवान आगे कहते है :-

12.10

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि, मत्कर्मपरमो भव|
मदर्थमपि कर्माणि, कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि||10||

(अगर तू) अभ्यास (योग) में भी (अपने को) असमर्थ (पाता) है, (तो) मेरे लिये कर्म करने के परायण हो जा। मेरे लिये कर्मों को करता हुआ भी (तू) सिद्धि को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग श्रेष्ठ है। त्याग से तत्काल ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसा मानकर कर्म करना चाहिए कि मैं जो कर रहा हूँ, वह ईश्वर की ही सेवा कर रहा हूँ। यही समझ कर और ऐसे भाव से काम करना चाहिए।
भगवान कहते हैं कि अगर इसमें भी कोई असमर्थ है तो इससे भी आसान रास्ता बताता हूँ।
और आगे कहते हैं :-

12.11

अथैतदप्यशक्तोऽसि, कर्तुं(म्) मद्योगमाश्रितः|
सर्वकर्मफलत्यागं(न्), ततः(ख्) कुरु यतात्मवान्||11||

अगर मेरे योग (समता) के आश्रित हुआ (तू) इस (पूर्व श्लोक में कहे गये साधन) को भी करने में (अपने को) असमर्थ (पाता) है, तो मन इन्द्रियों को वश में करके सम्पूर्ण कर्मों के फल की इच्छा का त्याग कर।

विवेचन:- श्री भगवान कहते हैं कि यदि तू अभ्यास करने में असमर्थ है तो जो भी काम कर रहा है तो उसे मन में मुझे रखकर कर। यदि तू मन से प्रत्येक कर्म को मुझको समर्पित करेगा तो तुझे अपने आप सिद्धियाँ प्राप्त होने लगेंगी। फल की अपेक्षा छोड़ करके कर्म करते रहना चाहिए।

मैं जो भी कर रहा हूँ, वह भगवान के लिए कर रहा हूँ। भगवान ने सभी कर्म को त्याग के लिए नहीं कहा है अपितु संन्यासी को भी कर्म करने के लिए कहा है।
यह हम आगे के अध्याय में जानेंगे।

कर्म तो करना पड़ेगा। बस इतना जानें कि मैंने आम का पेड़ लगाया है किन्तु उसके फल की अपेक्षा मैं नहीं करुँगा। बस मैं अच्छा कर्म करता रहूँ, ऐसा जान कर अपना काम करते रहें।
यदि पूछा जाए कि आप श्रीमद्भवद्गीता का कौन सा श्लोक जानते हैं तो अधिकतर लोग कहते हैं।

भगवान ने कहा है :-

कर्म किए जा फल की इच्छा मत कर ऐ इन्सान
जैसा कर्म करेगा वैसे फल देगा भगवान

फल का त्याग कर कर्म करने चाहिए, इसमेंअद्भुत शक्ति है ।

हमारे ही लर्न गीता प्रोग्राम में नेपाल से एक महिला जुड़ी थीं। उन्होंने कहा कि मेरे बेटे से बात कीजिए, वह हार्वर्ड का एडमिशन टेस्ट पास नहीं कर पा रहा है। दो बार एग्जाम दे दिया है। बारहवीं कक्षा में साढ़े अठानवें प्रतिशत (९८.५%) अंक लाया है और बहुत होशियार है। एडमिशन नहीं मिलने के कारण निराश हो गया है और डिप्रेशन में चला गया है। मैंने उससे बात की और उसे समझाया।

श्रीभगवान ने कहा है कि कर्म फल का त्याग करें। एक बार भगवान के कहे अनुसार, मेरे कहे अनुसार करो। बस तुम फल की अपेक्षा छोड़ कर ज्ञान प्राप्ति के लिए पढ़ाई करो। उसने बिना तनाव के आठ दिन बाद परीक्षा दी। फिर पन्द्रह दिन बाद ही उनका फोन आया कि एडमीशन हो गया है।

जब हम फल की अपेक्षा को त्याग देते हैं तो परिणाम बढ़ जाता है और हम विजय को प्राप्त करते हैं। हम जीतेंगे या हारेंगे, इस फल की अपेक्षा को त्याग कर यदि हम कार्य करें, तो सफलता अवश्य मिलेगी। जो भी कार्य करें, पूर्ण मन से करें, चाहे वह व्यवसाय हो, नौकरी हो अथवा कुछ और, किसी भी फल की इच्छा न रखें एवं वर्तमान में जिएँ।

जीवन में विजयी होना है तो श्रीमद्भगवद्गीता विजय का शास्त्र है।
किसी भी दशा में चाहे वह शिक्षक हो, विद्यार्थी हो, व्यापारी हो, गृहिणी हो, यदि अपने भावों की दिशा बदल दें और फल को ईश्वर को समर्पित कर दें तो सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है। जो इस भाव से काम करते हैं उनकी कार्यप्रणाली (परफॉरमेंस इंडेक्स) स्वतः ही अव्वल दर्जे की होती है।

अत उर्धव न संशय:
उनकी प्रगति, उनकी विजय भगवान निश्चित करते हैं। यही शिक्षा अपने बच्चे को दीजिए।
गीता जी का बारहवाँ अध्याय स्कूल और कॉलेज में सभी बच्चों को पढ़ना चाहिए।

12.12, 12.13, 12.14

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्, ज्ञानाद्ध्यानं(वँ) विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्याग:(स्),त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥12.12॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां(म्), मैत्रः(ख्) करुण एव च|
निर्ममो निरहङ्कारः(स्), समदुःखसुखः क्षमी||13||
सन्तुष्टः(स्) सततं(यँ) योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः(र्), यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः॥12.14॥

अभ्यास से शास्त्रज्ञान श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है (और) ध्यान से (भी) सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग (श्रेष्ठ है)। क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।
सब प्राणियों में द्वेषभाव से रहित और मित्र भाव वाला (तथा) दयालु भी (और) ममता रहित, अहंकार रहित, सुख दुःख की प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, योगी, शरीर को वश में किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मुझ में अर्पित मन बुद्धि वाला जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। (12.13-12.14)

विवेचन: भगवान कहते हैं कि सारे पुरुष सभी जीवों के लिए अद्वेष्टा बन जाएँ। हमारे मन में किसी जीव के लिए द्वेष न हो। सभी के लिए मातृत्व और करुणा का भाव रहना चाहिए। जो भगवान का भक्त होता है उसके मन से ,'यह कार्य मैंने किया' यह अहङ्कार की भावना निकल जाती है।

वह सोचने लगता है कि मैं होता कौन हूँ? करने वाला। वो श्रीभगवान ही यह सब करवा रहे हैं, मैं तो निमित्त हूँ। श्रीभगवान ने मुझसे यह कार्य करवाया, यह मेरा सौभाग्य है।

हमें श्रीहनुमान जी से यह बात सीखनी चाहिए। आप सुन्दरकाण्ड में पढ़ते हैं, लङ्का में उन्होंने कैसे उत्पात किया। सात समुन्दर पार किया,बीच में सुरसा को चकमा दिया। पहले विराट रूप, फिर बाद में अति लघुरूप धारण कर उसके मुँह बन्द होने से पहले बाहर आ गये।

अति लघु रूप क्या होता है ? १, २ , ... नहीं शून्य। हमें ये शून्य बनना है। मन का यह भाव कि मैं कुछ नहीं हूँ। यह सुरसा को भी पार करा देता है।

हनुमान जी ने मैंनाक पर्वत पर विश्राम नहीं किया, हाथ जोड़ प्रणाम किया। क्षमा याचना की कि मुझे आशीर्वाद दे दीजिए। हनुमान जी ने कहा कि मैं राम कार्य के लिए निकला हूँ, विश्राम नहीं कर सकता हूँ।

आगे चलकर उन्हें निशिचरी राक्षसी मिली जो माया से जीव को पकड़ कर भक्षण कर लेती थी। वह हनुमान जी की छाया को पकड़ कर खा गई। हनुमान जी ने उसके उदर में योग मार्ग द्वारा गदा से प्रहार किया और उसे नष्ट कर के आगे बढ़े। शून्य बनना हनुमान जी से सीखिये।

लङ्का से लौटने पर उनके कार्य का गुणगान होने लगा कि वह रावण की लङ्का का दहन कर आए हैं।

हनुमान जी हाथ जोड़ खड़े हो गए और **"त्राहिमाम-त्राहिमाम"** कहने लगे। वह बोले- हे भगवान मुझे बचा लो।

भगवान श्रीराम ने कहा कि हनुमान यह क्यों कह रहे हो भगवान बचा लो।

"प्रभु मुझे आपका दास ही बना रहने दीजिए, वरना मेरा अहङ्कार बढ़ जाएगा। सभी मेरी इतनी मेरी स्तुति कर रहे हैं। कहीं मुझमें अहङ्कार न आ जाए। हे नाथ मुझे बचा लो। आपका नाम लेकर ही सब कार्य सम्पन्न हुआ है।"

निर्ममो निरहङ्कारः(स्), समदुःखसुखः क्षमी|

एक भक्त के आचरण में इस तरह की निर्मलता और सरलता होना अत्यन्त आवश्यक है।

सुख में दुःख में सम होना कैसे सम्भव है। सुख में तो फिर भी हो सकता लेकिन दुःख में कैसे। सुख भी बाहर है और दुःख भी। सुख का अन्तिम छोर ही दुःख है। आनन्द का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है। प्रसन्नचित्त रहना चाहिए।

कुम्भ में नागा साधुओं का वीडियो सब ने देखा होगा। इतनी कड़ाके की सर्दी में गङ्गा स्नान कर, गीले बदन में सूर्य जल अर्पित कर, मस्त रहते हैं। ठण्डी है या गर्मी, उन्हें कोई अन्तर नही है। इस प्रकार से दोनों ही में सम रहना चाहिए।
जो व्यक्ति क्षमाशील हो जाते हैं, उनके मन में कभी अहङ्कार नहीं आता। वे सदैव सन्तुष्ट रहते हैं। इनकी सन्तुष्टि अन्दर रहती है, बाहर नहीं।

कई बार स्कूल में बच्चों से मिलता हूँ तो कोई बच्चा शिकायत करता है कि वो मुझे चिढ़ाता है। तो मैंने पूछा तुम चिढ़ जाते हो? 'हाँ, मुझे मोटू - मोटू कहता है तो मैं चिढ़ जाता हूँ।' मैंने कहा कि वो कामयाब हो गया, वो जीत गया और तुम हार गए। तुम्हे जीतना है या हारना है? बच्चे ने उत्तर दिया 'मुझे जीतना है।' तो आगे से कहना मैं खाते-पीते घर का हूँ। फिर कुछ दिन बाद बच्चे से पूछा अब कैसा है?
वह बोला कि अब मैं जीत रहा हूँ। चिढ़ाने पर मुस्काराता रहता हूँ।

यही भक्ति के लक्षण हैं। यदि किसी प्रिय व्यक्ति का देहान्त हो जाता है तो दुःख होना स्वाभाविक है किन्तु एक माह पश्चात धीरे-

धीरे वह कम हो जाता है, अतः सुख व दुःख दोनों में समान रहें। हम क्षमाशील बनें।
यदि कोई भूल कर भी रहा है तो उससे भी प्रेम करें। मन और बुद्धि दोनों को जो मुझे अर्पण कर दें, वही भक्त मुझे प्रिय हैं। हर्ष, भय और उद्वेग आदि से परे होकर जो समत्व भाव में स्थित हो जाता है, वह मेरा प्रिय भक्त है।

भक्त का एक और प्रमुख लक्षण है- **मम् रहित होना**, अर्थात ऐसा नहीं होना चाहिए कि सिर्फ हम अपने बच्चों को कुछ खिला रहे हैं।

मैं और मेरे की भावना से परे होना, अहङ्कार नहीं करना, सबके प्रति समभाव रखना, यह सभी उत्तम भक्त के लक्षण हैं। इस से आत्मिक सन्तुष्टि होती है।
भक्त दृढ़ निश्चयी, शरीर मन और बुद्धि पर निग्रह करने वाला होता है।

हमें भगवान का प्रिय भक्त बनने के लिए मन और बुद्धि दोनों उन्हें अर्पित करने होंगे।
इन दोनों के समर्पण के लिए पहली आवश्यक शर्त है: श्रद्धा का भाव होना। भगवान कहते हैं, अर्जुन! इन लक्षणों से युक्त भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

12.15

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः|
हर्षामर्षभयोद्वेगै:(र्), मुक्तो यः(स्) स च मे प्रियः||15||

जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता और जो स्वयं भी किसी प्राणी से उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेग (हलचल) से रहित है, वह मुझे प्रिय है।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता, वह भक्त मुझे प्रिय है। उद्वेग यानि क्रोध, नकारात्मकता, चिड़चिड़ापन, तनाव। जो अपना नियन्त्रण दूसरे के हाथ में नहीं देता है, उसके कारण को दूसरा भी उद्वेलित नहीं होता है।

यह विजय का शास्त्र है।

भगवान कहते हैं- अर्जुन विजयी बनना है तो भक्त बन। भक्त का लक्षण है कि वह समत्व को प्राप्त करता है। जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेग (हलचल) से रहित है, सभी में सम है, वही सच्चा भक्त है। उस के अन्दर से क्षणिक सुख या दुःख की अनुभूति, दोनों ही चली जाती हैं। आप को अनुभव होगा, कई बार रेलवे स्टेशन पर उद्घोषणा होती है कि आप के स्टेशन पर मुम्बई से आने वाली मुम्बई हावड़ा ट्रेन पाँच घण्टे की देरी से चल रही है। उस परिचारिका की आवाज में या मुख पर कोई दुःख तो नहीं दिखता है।

आप कुछ समय के लिए अमर्ष हो जाते हैं, कैसे होगा? पाँच घण्टा यहाँ खड़ा रहना पड़ेगा। फिर कुछ समय बाद वह ट्रेन आती है। आप चढ़ कर चले जाते हैं। आप हर्षित हो जाते हैं। जो क्षणिक सुख और दुःख से मुक्त हो जाता है वो उद्वेग से मुक्त हो जाता है और भय से भी मुक्त हो जाता है।

क्रोध, भय, ईर्ष्या ये सभी नकारात्मकता हैं। अगर किसी भी कारण मैं इनका शिकार हुआ हूँ तो यह अध्याय तो मेरे लिए है। हमें कहना पड़ेगा कि ये तो बाहर की चीजें हैं। इन्हें अपने भीतर प्रवेश नहीं करने देना चाहिए। कहना चाहिए (नो एंट्री), ऐसे विचार मेरे मन में प्रवेश नहीं कर सकते।

श्रीभगवान कहते है- अर्जुन सुख बाहर हैं, वो नश्वर हैं। दुःख भी बाहर हैं और वो भी नश्वर हैं। क्षणिक हैं।

ट्रेन आने की देरी के कारण कुछ समय के लिए हम दुखी होते हैं और रेलगाड़ी आ जाने पर वह दुःख स्वतः समाप्त होकर सुख का अनुभव होने लगता है। हम ट्रेन में बैठकर अपने स्टेशन पर उतर गए और वह सुख भी जाता रहा। वह भी नष्ट हो जाता है। यह सुख और दुःख बाहर की चीज हैं, नश्वर हैं। अन्दर की चीज प्रसन्नता है तो सदा प्रसन्नचित रहो।

सबसे बड़ा दुःख अपने प्रिय का मृत्यु है।
अपने लर्न गीता समूह की एक घटना है। कोरोना के समय एक गीता सेवी के पति की मृत्यु हो गई, किन्तु शाम को उन्होंने गीता का पाठ सिखाया। जब मुझे पता चला तो उनसे पूछा कि आपको दुःख नहीं हुआ। आप कैसे यह कर पायीं?

तो उन्होंने कहा मुझे दुःख तो बहुत था, करोना का समय था, मुझे पति को देखने का भी अवसर प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु मैंने यह सोचा कि अगर गीता का पाठ चलेगा तो इससे शुभ कुछ नहीं हो सकता। मैंने अपने दुःख को छुपा कर बहुत ही अच्छे मन से गीता का पाठ किया। हमारे जीवन में सबसे बड़ा दुःख होता है किसी प्रिय व्यक्ति का चले जाना।

ऐसे समय पर भी समत्व धारण किया जा सकता है। पहले भी किसी प्रिय व्यक्ति के चले जाने पर दुःख हुआ था। कुछ समय बाद वह नष्ट हो जाता है।

सुख और दुःख दोनों ही नश्वर हैं।

सन्तुष्टः(स्) सततं(यँ) योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।

दृढ निश्चय होना चाहिए कि भगवान हैं। तब भगवान किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं।

इस प्रकार का दृढ निश्चय शबरी के मन में था। "मेरे गुरु मतङ्ग ऋषि ने कहा है तो भगवान जरूर आएँगे।"

पौराणिक कथा के अनुसार, **शबरी** भील समाज से थी। भील समाज में किसी भी शुभ अवसर पर पशुओं की बलि दी जाती थी। उसके घर में कुछ मेमने थे। छोटी सी शबरी उनसे खेलती थी। शबरी को उनसे बहुत स्नेह हो गया था।

एक दिन मजाक में उनके पिता ने कह दिया कुछ दिन खेल ले शबरी, कुछ दिन बाद तेरे विवाह में इनकी बलि दी जाएगी।

कई जगह यह प्रथा है कि शादी के समय पशुओं का वध कर मेहमानों को भोजन करवाया जाता है। लेकिन **शबरी** को पशु-पक्षियों से बहुत स्नेह था। शबरी डर गयी और इसलिए पशुओं को बलि से बचाने के लिए शबरी ने विवाह नहीं करने का निर्णय लिया।

वह रात के समय घर छोड़ कर चली गयी। पीछे से ढूँढ़ते हुए उसके पिता आ रहे थे। बचने के लिए दिन में वह पेड़ पर चढ़ गई। पिता के समीप आने पर उसने अपनी साँस को रोक ली। अगली रात भी शबरी भागती रही, फिर उस ने देखा कि सामने कोई आश्रम है। उसमें सात्विक लोग रह रहें हैं, यह सोचकर शबरी भागते-भागते हुए उस आश्रम में चली गयी।

ऋषियों ने शबरी से उसका परिचय पूछा तो शबरी ने नहीं बताया, वह डर रही थी। उसे लगा यदि बता दिया तो यह मुझे मेरे घर पहुँचा देंगे। फिर पिता जी सारे मेमनों की बली चढ़ा देंगे। ऐसा जानकर वह सिर्फ आश्रम में रहने का निवेदन करने लगी। "मैं आश्रम का सभी काम कर दूँगी, मुझे सिर्फ रहने का स्थान दे दो।" ऋषि मतङ्ग ने शबरी को अपनी बेटी कहकर उसको एक कुटिया में शरण दी, और सेवा करने को कहा, समय बीतता गया, मतङ्ग ऋषि बूढ़े हो गए।

मतङ्ग ऋषि ने सब ऋषियों से कहा- अब मेरे जाना का समय हो गया है, कुछ जानना और पूछना चाहते हो तो पूछो।

अनेक दिन शास्त्रार्थ हुआ।

फिर मतङ्ग ऋषि का ध्यान शबरी के ऊपर गया। शबरी तुम भी कुछ पूछो। शबरी ने कहा ,मैं अज्ञानी हूँ, मैं क्या पूछूँ?

जो भी तेरे मन में है पूछ ले। शबरी ने पूछा, गुरुवर मुझे बतायें क्या श्रीभगवान मुझे मिलेंगे? मतङ्ग ऋषि ने मुस्कारते हुए कहा– हाँ बेटी जरूर मिलेंगे। इसी आश्रम में तुम्हें मिलने श्रीराम आयेंगे। शबरी प्रसन्न हो गई, प्रसन्नता से नाचने लगी।

मतङ्ग ऋषि समाद्धिस्थ हो गए, सभी ऋषि मुनि आश्रम छोड़कर चले गए। मात्र शबरी बच गई। शबरी ने मतङ्ग ऋषि के इस वचन को पकड़ लिया कि राम आयेंगे। शबरी नित्य भगवान के लिए रास्ते की सफाई करती, फूल बिछा कर रखती।

उनके लिए फल तोड़कर लाती और पूरे दिन भगवान श्रीराम की प्रतीक्षा करती। प्रतीक्षा करते-करते शबरी बूढी हो गई, लेकिन अब तक श्रीराम नहीं आये।

फिर एक दिन भगवान राम आ ही गये– अब शबरी के वर्षों की प्रतीक्षा समाप्त होने वाली थी। शबरी पागलों की तरह दौड़ती हुई गयी। वह श्रीभगवान के पैर पर सिर रख कर रो रही थी। श्रीभगवान ने शबरी को उठाया और गले से लगाया।

भगवान बोले, "मुझे अन्दर भी बुलाओगी।"

"भगवान मैं तो भूल ही गई, आओ भगवन पिछले सत्तर साल से आपके चरण पखारने के लिए जल को तपा रही हूँ।"

"शबरी इसकी आवश्यकता नहीं रही, तुम्हारी आँखों से बहती अश्रुधारा ने सब साफ कर दिया है।"

"आओ भगवान बैठो। मैंने आज भी कुछ बेर इकट्ठा किये हैं, इसे खायें प्रभु।" शबरी को लगा कि कहीं बेर खट्टे ना हों। वह एक-एक बेर को चखती और केवल मीठे बेर भगवान को खिलाती जाती। भगवान को बेर बहुत मीठे और स्वादिष्ट लगे और उन्होंने शबरी के जूठे बेर बहुत प्रेम से खाए।

लोग कहते हैं, भगवान खाते नहीं,

बेर शबरी के जैसे, खिलाते नहीं।

आजकल सब यह करते हैं कि भगवान के सामने भोग रख दिया, टिन-टिन घण्टी बजाया, हो गया। श्रीभगवान भाव के भूखे हैं। शबरी के जैसे भाव रखना चाहिए, जैसे वह अपने आप को भूल कर भगवान के लिए जीती रहीं। आगे शबरी कहती हैं कि मुझे पता नहीं भक्ति क्या होती है।

भगवान ने शबरी को नवधा भक्ति के बारे में बताया।

मैंने स्वामी जी से एक दिन पूछा कि क्या शबरी के जैसा कोई अन्य भक्त हो सकता है?

भगवान ने नवधा भक्ति केवल शबरी के लिए नहीं कही है अपितु हम जैसे अज्ञानीजन के लिए भगवान ने नवधा भक्ति प्रदान की है।

शबरी में वो सभी गुण विद्यमान थे। शबरी अन्तरध्यान हो गयीं, शबरी को अग्नि देने का काम भगवान ने स्वयं किया ।

इससे हमें समझ आता है कि सच्चे भक्त के क्या लक्षण होते हैं?

ईश्वर ने सिर्फ हमें निमित्त बनाया है। श्रीभगवान कहते हैं कि जो सुख और दु:ख से परे हो गया है, इस प्रकार का भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

12.16, 12.17

अनपेक्षः(श्) शुचिर्दक्ष, उदासीनो गतव्यथः|
सर्वारम्भपरित्यागी, यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः||16||
यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति|

शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्यः(स्) स मे प्रियः||17||

जो अपेक्षा (आवश्यकता) से रहित, (बाहर-भीतर से) पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथा से रहित (औरः सभी आरम्भों का अर्थात् नये-नये कर्मों के आरम्भ का सर्वथा त्यागी है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।
जो न (कभी) हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है (और) जो शुभ-अशुभ कर्मों से ऊँचा उठा हुआ (राग-द्वेष रहित) है, वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

विवेचनः- जो पुरुष आकांक्षा व अपेक्षा से रहित हो जाता है, वह मुझे प्रिय है। श्रीभगवान कहते हैं कि जब किसी प्रकार की चाहत नहीं रहती तब मनुष्य बाहर से और भीतर से शुद्ध हो जाते हैं। ऐसे भक्त उदासीन रहते हैं, यानि उदास नहीं। वे सभी परिस्थितियों में सम रहते हैं संतुलित (बैलेंस) रहते हैं। पक्षपात से दूर रहते हैं। सुख दुःख से मुक्त रहते हैं।
सर्वारम्भपरित्यागी ये कार्य मैंने किया है उससे भी जो परे हो जाते हैं, ऐसे भक्त हमें प्रिय लगते हैं।

भगवन आगे कहते हैं-अर्जुन सुन मुझे कैसे भक्त प्रिय लगते है:-

12.18

समः(श्) शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः|
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः(स्) सङ्गविवर्जितः||18||

(जो) शत्रु और मित्र में तथा मान-अपमान में सम है (और) शीत-उष्ण (शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता) तथा सुख-दुःख (मन बुद्धि की अनुकूलता-प्रतिकूलता) में सम है एवं आसक्ति रहित है (और) जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जिस किसी प्रकार से भी (शरीर का निर्वाह होने न होने में) संतुष्ट, रहने के स्थान तथा शरीर में ममता आसक्ति से रहित (और) स्थिर बुद्धिवाला है, (वह) भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है। (12.18-12.19)

विवेचनः श्रीभगवान कहते हैं कि शत्रु भी बाहर है और मित्र भी बाहर। उसे सदा सम भाव से ही देखना सीखना चाहिए।

जो शत्रु एवं मित्र, मान एवं अपमान, सुख-दुःख सब में आसक्ति से परे है, जिसको निन्दा और स्तुति से कोई अन्तर नहीं पड़ता, शत्रु के साथ और मित्र के साथ समान व्यवहार करता है, जो क्षमा करता है, वह ही भक्त मुझे प्रिय है।

इस छोटे से जीवन में वह बदला लेने का भाव हृदय में लेकर नहीं जीता है, यदि उसके हृदय में काँटा चुभा भी है तो वह अपने आप को विचलित नहीं करता। अथवा उससे बात करके उसे क्षमा कर देता है, जो शत्रु को देखकर भी मन में द्वेष की भावना नहीं पनपाता है, वही भक्त मुझे प्रिय है।

एक बार बुद्ध भगवान को किसी ने बहुत ही अपमानित किया और गालियाँ दीं। भगवान ने उससे पूछा, "और कुछ कहना है?" वह व्यक्ति और क्रोधित होकर वहाँ से चला गया। वह व्यक्ति रात भर सो नहीं पाया। उसके मन में पश्चाताप आया। वह व्यक्ति बहुत लज्जित हुआ।

जब हम गलत कर्म करते हैं तो हमारे मन में पश्चाताप की भावना रहती है।

अगले दिन सुबह उठकर उसने भगवान बुद्ध से क्षमा माँगने के लिए पुष्पहार लिया। उस वह हार भगवान बुद्ध के गले में अर्पित किया और भगवान के चरणों में नतमस्तक होकर क्षमा माँगने लगा। उसने भगवान बुद्ध जी को फूलों की माला पहनाई एवं उनके पैर छुए। तब भी बुद्ध भगवान ने पूछा, "क्या तुम्हें कुछ और कहना है?" उसने कहा, "नहीं।"

उनके शिष्यों को आश्चर्य हुआ कि उसने आपको कल अपमानित किया और गालियाँ दीं और फिर आज उसने आपको माला पहनाई। दोनों परिस्थितियों में आपको न गुस्सा आया और न ही हर्ष हुआ, यह हमारी समझ में नहीं आया।

तब भगवान बुद्ध ने कहा कि यह दोनों तरह के आचरण और उनसे जुड़ी भावनाएँ उसकी थीं। उसने अपमानित किया और गालियाँ दिया। आज वही फूल माला लेकर आया। मैंने उसके व्यवहार को अपने अन्दर लिया ही नहीं। फिर सुख या दुःख किस बात का।

यही हमारे साथ होता है। जिस तरह जब हम त्रिवेणी सङ्गम जी में नहाने जाते हैं तो पहले पानी देखकर ठण्ड से कँपकँपाते हैं, किन्तु हम जब उसमें गोता लगा देते हैं तब हमें अच्छा लगने लगता है। गर्मी लगने लगती है।

भगवान कहते हैं - 'न ठण्ड ने अन्दर प्रवेश किया, न गर्मी ने विचार ही बदले' 'सुख-दुःख' में जो आसक्ति रहित रहता है। अर्जुन वह भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

12.19

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी, सन्तुष्टो येन केनचित्|
अनिकेतः(स्) स्थिरमतिः(र्), भक्तिमान्मे प्रियो नरः||19||

विवेचन: भगवान कहते है- अर्जुन जो भक्त निन्दा एवं स्तुति में समान भाव रखता है, जो अन्दर से कभी विचलित नहीं होता, जो एकदम सन्तुलन में है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है। निन्दा और स्तुति में तुल्य होकर देखिएगा। आपके पीछे अनेकों बार आप की निन्दा हुई, आपको पता भी नहीं है। लेकिन सामने निन्दा होने पर हम विचलित होने लगते हैं।

एक बार यह मान लें कि यह भी मेरे सामने नहीं हो रहा हैं। उसको अपने अन्दर नहीं जाने देना है। **अन्दर प्रवेश नहीं करने देना है।**

मैं एक संस्था में अध्यक्ष के रूप में काम करता हूँ। मैंने उसी समय श्रीमद्भगवद्गीता जी का अध्ययन आरम्भ किया था। एक व्यक्ति ने इसका तीव्र विरोध किया। मैंने सोचा श्रीमद्भगवद्गीता जी का प्रयोग करते हैं। उनसे पूछा, "क्या आपको और भी कुछ कहना है। हम सुधारने का प्रयास करेंगे।" साल भर यही सिलसिला चलता रहा।

बाद में उन्होंने शिकायत करना बन्द कर दिया। अब तो ऐसी हालत है कि वह व्यक्ति मुझ से प्रसन्न रहने लगे। कभी-कभी मेरी प्रशंसा भी करने लगे।

हमें शत्रुता के भाव को समाप्त करना पड़ेगा। प्रेम करने का समय बहुत कम हैं। हम सत्तर, अस्सी वर्ष के समय में शत्रुता का काँटा लेकर कहाँ तक जाएँगे।

अन्त समय में वही शत्रुता की भावना आत्मा को जकड़े रहेगी।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्|

इह संसारे बहुदुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे||

भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते|

संप्राप्ते सन्निहिते काले, न हि न हि रक्षति डुकृञ् करणे||

हम मृत्यु के इतने समीप जा चुके हैं।

अभी हाल की ही घटना है। गुजरात के एक स्कूल में आठ साल की तीसरी क्लास की बच्ची की हार्ट फ़ैल के कारण मृत्यु हो गयी।

मृत्यु कब घेरेगी, यह किसी को पता नहीं है। अपने मन को शुद्ध रखें। जिससे शत्रुता है, उससे क्षमा माँगकर आयें।

एक समय जो आपका हितैशी था। किसी गलतफमी के कारण मित्रता शत्रुता में बदल गयी। उससे मिलकर बात करें।

श्रीभगवान कहते हैं कि जिसके अन्तर्मन में निर्मलता होती है, जो हमेशा अपने मन और विचारों के प्रति सावधान रहता है। जिसका शत्रु के साथ भी सम व्यवहार होता है, जो शत्रुता के काँटे को दिल में लेकर आगे नहीं बढ़ता। श्रीभगवान को पाना ही जिसका उद्देश्य होता है, जिसमें कोई छल-कपट या दिखावा प्रवेश नहीं कर सकता। ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है। जिससे भी मिलें उससे प्रेम भाव से मिलें।

आप शिक्षक हैं तो छात्र से कृष्ण गोपाल की तरह व्यहार करें।
व्यपारी हैं तो ग्राहक से तुला वैश्य की तरह भगवान स्वरुप व्यवहार करें।
गृहणी हैं तो भोजन कृष्ण गोपाल के लिए बना रही हूँ। यह विचार मन में रखना चाहिए। प्रेम पूर्वक इसे बनायें और प्रेम से ही खिलायें ।

भगवान आदि शंकराचार्य द्वारा रचित शिव स्तुति में उन्होंने कहा :-

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रासमाधिस्थितिः।।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।।4।।

हे शंकर! आप मेरी आत्मा हैं। मेरी बुद्धि आपकी शक्ति पार्वती जी हैं। मेरे प्राण आपके गण हैं। मेरा यह भौतिक शरीर आपका मन्दिर है।

संपूर्ण विषय भोग की रचना आपकी पूजा ही है। मैं जो सोचता हूं, वह आपकी ध्यान समाधि है। मेरा चलना-फिरना आपकी परिक्रमा है।

मेरी वाणी से निकला हर शब्द आपके स्तोत्र व मंत्र हैं। इस प्रकार मैं आपका भक्त जिन-जिन कर्मों को करता हूं, वह आपकी ही आराधना है।

आज से मेरे मन में एक भाव आ जाये कि मैं जो भी कार्य कर रहा हूँ वह तेरे आदेश का पालन कर रहा हूँ।

एक बहुत ही सुन्दर प्रार्थना पूज्य हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने कही है :

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूं अब तेरे काज ।
पालन करने को आज्ञा तब मैं नियुक्त होता हूं आज ॥

अन्तर में स्थित रह मेरी बागडोर पकड़े रहना ।

निपट निरंकुश चंचल मन को सावधान करते रहना ॥

अन्तर्यामी को अन्तः स्थित देख सशंकित होवे मन ।
पाप वासना उठते ही हो, नाश लाज से वह जल भुन ॥

जीवों का कलरव जो दिन भर सुनने में मेरे आवे ।
तेरा ही गुनमान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे ॥

तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि ! तुझमें यह सारा संसार ।

इसी भावना से अन्तर भर मिलूं सभी से तुझे निहार ॥

प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से जो कुछ भी आचार करूं ।
केवल तुझे रिझाने, को बस तेरा ही व्यवहार करूं ॥
कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूं अब तेरे काज ।

पालन करने को आज्ञा तब मैं नियुक्त होता हूं आज ॥

आगे भगवन कहते है :-

12.20

ये तु धर्म्यामृतमिदं(यँ), यथोक्तं(म्) पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा, भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥12.20॥

परन्तु जो (मुझ में) श्रद्धा रखने वाले (और) मेरे परायण हुए भक्त इस धर्ममय अमृत का जैसा कहा कहा है, (वैसा ही) भली भांति सेवन करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

विवेचन: भगवान कहते है- अर्जुन वे भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं जो मुझ में श्रद्धा रखते हैं।
ऐसे श्रद्धायुक्त पुरुष, मन और बुद्धि को अलग कर श्रद्धा से मुझे भजते हैं। मेरी उपासना करते हैं।
मेरे परायण हुए भक्त इस धर्ममय अमृत को जैसा कहा गया है, वैसा ही भली भांति सेवन करते हैं, वे मुझे अत्यन्त ही प्रिय हैं।

इस तरह विभक्त से भक्त की ओर, भक्ति योग का आज का विवेचन सत्र समाप्त हुआ।
इसके उपरान्त प्रश्नोत्तर प्रारम्भ हुए।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - संजय भैया
प्रश्न - गीता जी का हम अध्ययन तो कर रहे हैं। क्या कोई मेडिटेशन और साधना का तरीका है जिससे हम गीता जी से जुड़ सकें और गीता जी को अपने जीवन में ला सकें?
उत्तर - इसका बहुत साधारण सा तरीका है। आपने पढ़ा है कि श्रीमद्भगवद्गीता एक योग शास्त्र है। जैसे-जैसे आप इसे आगे पढ़ते जाएँगे, गीता को अपने जीवन में लाने का तरीका आपके सामने खुलता जाएगा। जब आप आगे के अध्याय पढ़ेंगे तो यह आपको स्पष्ट हो जाएगा।

आप आज से ही यह प्रयास कीजिए कि जब भी अकेले बैठ कर भगवान का स्मरण कर रहे हैं या पूजा में बैठ रहे हैं तो एक मिनट के लिए ग्यारह बार श्रीभगवान का नाम लेते हुए गहरी साँस लें। साँस इतनी गहरी हो कि वह हमारे फेफड़ों के तले तक पहुँच जाए।

आप मन ही मन बोले **श्री कृष्ण: शरणम् ममः।**

फिर उतने ही काल खण्ड में साँस को बाहर निकालें।
जब आप ग्यारह बार यह करें तो मन में कोई और विचार ना लाएँ।
मात्र कृष्ण स्वरूप पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।

कल से ही आप एक मिनट के लिए इस साधना को प्रारम्भ कर दें।

चार चरण में श्लोक कहे जाते हैं। पहले चरण पर साँस भीतर लें, दूसरे चरण पर साँस छोड़ें।
थोड़े समय पश्चात आपको इसका प्रयत्न भी नहीं करना पड़ेगा और यह अपने आप होने लगेगा।
इसके लिए एक तो सीधा बैठना बहुत जरूरी है और दूसरा साँस पर ध्यान देना है।
जैसे-जैसे यह अभ्यास बढ़ता जाएगा, आपके सामने साधना के द्वार खुलते जाएँगे।
आप गीता जी के अभ्यास को छोड़ना मत, इसे निरन्तर करते रहना।

प्रश्नकर्ता - दिव्या दीदी
प्रश्न - यदि हमारे द्वारा एक चिड़िया की हत्या हो गई पर इस कार्य से दस चिड़ियों की जान बच गई तो क्या हमारे को इसका कोई पाप लगेगा? क्या हमारा पाप कट जाएगा? यदि कोई पाप हो जाए तो उसे कैसे दूर करें?
उत्तर - श्रीभगवान अर्जुन को यही समझा रहे हैं कि हे अर्जुन तुम दुर्योधन, दुशासन और कौरवों की हत्या कर दो। हमें उस हत्या के पीछे का कारण भी समझना होगा। यहाँ यह हत्या करना अर्जुन का कर्तव्य था क्योंकि दुर्योधन और दुशासन ने द्रौपदी के बाल पड़कर उसे भरी सभा में अपमानित किया था। ऐसे व्यक्ति को देहदण्ड की सजा देनी पड़ती है।

भगवान के कहने पर अर्जुन ने यह देहदण्ड उन्हें दिया। अर्जुन युद्ध करने से घबरा रहे थे। वह धनुष बाण चलाने में भी असमर्थ हो गये थे। अर्जुन को सही राह दिखाने के लिए श्री भगवान ने यह श्रीमद्भगवद्गीता जी कही हैं। यह सुनाकर श्रीभगवान ने अर्जुन को बाण चलने के लिए कहा।

अहिंसा परमो धर्म:।

हमें हर स्थिति में अहिंसा का पालन करना चाहिए।

कई बार ऐसी परिस्थिति भी आ जाती है कि सामने कोई आतङ्की है और उसको मारने से दस लोगों की जान बच सकती है तो ऐसे समय पर उस एक की हत्या का पाप नहीं लगता। अहिंसा इसी को कहते हैं। श्रीमद्भागवद्गीता में भगवान ने यही बात हम लोगों को समझाई है।

दस चिड़ियों को बचाने के लिए यदि एक कौवे को पत्थर मारा जाए और वह कौवा मर जाए तो इसमें पाप नहीं है। उद्देश्य तो कौवे को उड़ाना था, वह मर गया तो इसमें किसी को दोष नहीं है। बिना किसी कारण कौवे को मारना, वह गलत है। आप यदि बिना किसी वजह के, किसी पक्षी की या कौवे की हत्या करते हैं तो फिर आपको पाप लगेगा। केवल अपने मजे के लिए या मनोरञ्जन के लिए किसी पक्षी की हत्या करना गलत है। यह दुष्टता है।

कई बार कुछ लोग अपने मनोरञ्जन के लिए गाय की पूँछ मरोड़ देते हैं या कुत्ते को पत्थर मार देते हैं। यह बिल्कुल गलत है। बिना कारण किसी पञ्छी को पिञ्जरे में रखना भी गलत है। ऐसे कार्य करने से पाप जरूर लगेगा। यह भाव हमेशा मन में रहे।

यदि कभी गलती से ऐसा पाप हो भी जाए तो भगवान के सामने जाकर पश्चाताप करना चाहिए। वह हृदय से होना चाहिए। आँखों से आँसू गिर जाने चाहिए।

जब आप पूरे मन से भगवान को अपनी कहानी सुनाएँगे कि श्रीभगवान यह हमारा मन्तव्य नहीं था। परन्तु गलती से ऐसा हो गया तो श्रीभगवान आपको अवश्य ही क्षमा कर देंगे।
आपको इस पाप से मुक्त होने के लिए दस अच्छे काम भी करने पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता - नेहा दीदी
प्रश्न - आपने बताया कि हमें सभी मनुष्यों में ईश्वर को देखना चाहिए। सुग्रीव के मन में बाली के प्रति दुश्मनी का भाव आ गया था तो फिर वह उसमें ईश्वर को कैसे देखेगा? सुग्रीव द्वारा बाली का वध करना क्या अहिंसा नहीं है?
उत्तर - आप सभी जानते हैं कि भगवान श्रीराम को भी रावण को मारना पड़ा। भगवान राम की रावण से कोई शत्रुता नहीं थी। यदि भगवान श्रीराम की रावण से शत्रुता होती तो फिर वह लक्ष्मण को नहीं कहते कि जाओ और मृत्यु शय्या पर पड़े हुए रावण

से ज्ञान प्राप्त करो। उन्होंने लक्ष्मण को रावण से ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा था। यदि शत्रुता रहती तो यह बात कदापि न कहते।

भीष्म पितामह से यदि भगवान श्रीकृष्ण की शत्रुता हो जाती तो फिर शरशैया पर अपनी मृत्यु का समय गिन रहे भीष्म पितामह के पास वह क्यों जाते?
भीष्म पितामह से अन्तिम उपदेश लेने के लिए भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन उनके पास गए थे। शत्रुता का भाव होता तो वह क्यों जाते?
महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जितने भी वध किए हैं, वह शत्रुता के भाव से नहीं थे। वरन् उनके पास वध करने के अलावा और कोई उपाय नहीं था।

कौरवों ने बेहद ही ज्यादा आतङ्क मचाया हुआ था। श्रीभगवान ने कौरवों को समझाने का बहुत प्रयत्न किया पर जब शिष्टाचार का भाव ही समाप्त हो गया तो युद्ध आवश्यक हो गया था। दुर्योधन को समझाने के लिए भगवान स्वयं हस्तिनापुर गए थे। तब दुर्योधन ने भगवान को जञ्जीरों में जकड़ना चाहा। भगवान ने अपना पहला विराट रूप दुर्योधन को दिखाया था।

श्रीरामचन्द्र जी ने भी अङ्गद को शिष्टाई करने के लिए भेजा था पर रावण नहीं माना। उसने अङ्गद की बात को नहीं सुना इसलिए युद्ध हुआ और श्रीभगवान को रावण का अन्त करना पड़ा। जब कोई इलाज नहीं बचता तो ऐसी आततायियों को मारना ही पड़ता है।

बाली को मारना अनिवार्य हो गया था। वहाँ शत्रुता का भाव नहीं था। वह कर्तव्य की भावना से मारा गया है।
यदि एक व्यक्ति की हत्या से हजारों निष्पाप लोगों की जान बचाई जा सकती है तो फिर वह हत्या नहीं है। वह कर्म है और यह एक पुण्य कर्म है।
आपको यही बात सोचनी चाहिए।
जब किसी आतताई की हत्या की जाती है तो उसे हिंसा नहीं, अहिंसा ही कहते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'भक्तियोग' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||